कबीर दास की काव्य चेतना और रहस्यवाद

[1]राजीव कुमार, [2]डॉ. प्रमोद कुमार
[1]शोधार्थी, [2]असिस्टेंट प्रोफेसर
[1]दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (धारवाड़) कर्नाटक, [2]दयाल सिंह कालेज, दिल्ली विश्वविधालय

Accepted: 05.01.2023 **Published**: 02.02.2023

सार *– मध्यकालीन भारत के एक प्रतिष्ठित रहस्यवादी कवि, कबीर दास, समकालीन धार्मिक अभ्यास की कठोर संरचनाओं को चुनौती देते हुए, आध्यात्मिकता के प्रति अपने अपरंपरागत दृष्टिकोण के लिए खड़े हैं। उनकी कविता रहस्यवाद के सार का प्रतीक है, जो परमात्मा के प्रत्यक्ष, अंतरंग अनुभव की विशेषता है, जिसे अक्सर 'रहस्य' या रहस्य के रूप में वर्णित किया जाता है, जो निजी है और शब्दों या तर्कसंगत स्पष्टीकरण के दायरे से परे है। सूफी फकीरों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली प्रेम की पारंपरिक कथाओं या अद्वैतवादियों के शास्त्रीय दृष्टिकोण को खारिज करते हुए, कबीर का रहस्यवाद ईश्वरीय प्राप्ति की ओर एक व्यक्तिगत यात्रा द्वारा चिह्नित है। इस अनुभूति की प्रक्रिया परिवर्तन, आध्यात्मिक जागृति, समर्पण, आत्म–समर्पण और मिलन के चरणों का अनुसरण करती है, जैसा कि रहस्यवादी विद्वान मिस अंडरहिल ने बताया है। कबीर इस यात्रा में गुरु की महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर देते हैं, जो साधक को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। उनकी कविता अहंकार से परे, और अद्वैत की स्थिति में परिणत होने, जहां आत्मा सार्वभौमिक चेतना के साथ विलीन हो जाती है, परमात्मा के साथ एकता की गहरी लालसा को दर्शाती है। रहस्यवाद की बौद्धिक विरोधी आलोचना के बावजूद, कबीर का काम आध्यात्मिक जागृति को बढ़ावा देने और अपने समय की रूढ़िवादिता को चुनौती देने में अपनी प्रगतिशील भूमिका को दर्शाता है। प्रतीकों, रूपकों और विरोधाभासों से समृद्ध उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति, जटिल आध्यात्मिक अनुभवों को समझने योग्य दायरे में लाती है, जिससे उनका रहस्यवाद आम व्यक्ति के लिए सुलभ और प्रासंगिक हो जाता है।*

महत्वपूर्ण शब्द *– कबीर दास, रहस्यवाद, रहस्य (गुप्त), आध्यात्मिक जागृति, गैर द्वंद्व, गुरु–शिष्य का रिश्ता, दिव्य मिलन, काव्यात्मक प्रतीकवाद*

प्रस्तावना

'रहसि भवम् रहस्यम्'! रहस्य का अर्थ है गोपनीय, गुप्त, गुह्य। प्राइवेट में सम्पन्न होने वाली अनुभूति ही रहस्य है। एकान्त साध्य कर्म ही रहस्य है। ब्रह्म भी इसलिए रहस्य है कि वह एकान्त में सम्पन्न हाने वाली प्राइवेसी है। रहस्य भावना है परोक्ष के प्रति जिज्ञासा।

शब्द विकल्पों के जनक हैं। इन विकल्पात्मक शब्दों के द्वारा जब ब्रह्म का निवर्चन किया जाएगा तो धोखा ही होगा। कबीर कहते हैं–

संतों धोखा का सु कहिए

जस कहत तस होत नहीं है

जस है तैसा होहिं।

ब्रह्म न तो किसी शब्द का मोहताज है न किसी परिभाषा का। अभिव्यक्ति जो ससीम है वह असीम को नहीं बांध सकती। कबीर दास इस ब्रह्म को ढुढ़ने के बाद, जब कहीं कुछ प्राप्त नहीं कर पाते तो अंततः झुझलाकर कहते हैं, 'तहां कछु आहि की शुण्यम वहां कुछ है भी कि शुण्य ही शुण्य है। कबीर दास जी का ब्रह्म शुण्य है और इसलिए रहस्य है।

कबीर दास के रहस्यवाद को बने बनाये ढाँचे में भी रखकर देखा जा सकता है, लेकिन जिस तरह कबीर दास जी स्वभाव से ही ढाँचा तोड़क कवि हैं कविता में, उसी तरह वे ढाँचा तोड़क है, अध्यात्म में। इसी कारण कोई उसे सिद्धों–नाथों के राहस्यवादी ढाँचे में रखकर देखता है और कोई सूफी सम्प्रदाय के ढ़ाँचे में। ईसाई रहस्य मर्मियों के ढाँचे में रखने से भी कबीर दास जी का रहस्यवाद उसमें सोलहो आने फिट हो जाता है। सभी प्रकार के रहस्यवाद का अट जाना ही यह सिद्ध करता है कि उसका कोई एक ढाँचा नहीं है।

कबीर ने अपने रहस्यवाद के लिए सूफियों की तरह

प्रेमगाथा का सहारा नहीं लिया है, अद्वैतवादियों की तरह कोई व्याख्या भी नही दी है। उन्होनें ईसाई रहस्यवादियों की तरह संस्मरणों को लेखबद्ध भी नहीं किया है, किन्तु उनके रहस्यवाद में भावना के विकास का एक उत्तरोत्तर क्रम खोजा जा सकाता है।

रहस्यवाद की चार विशेषताएँ हैं— प्रेम, आध्यात्मिकता, सतत् जागृति तथा भावना के साथ हृदय की उन्मुखता।

कुमारी अंडरहिल ने रहस्यवाद की पाँच अवस्थाएँ मानी है—

1. परिवर्तन,
2. अध्यात्मिक जागरण,
3. उद्भाषण या दिव्यीकरण,
4. आत्म समर्पण और
5. मिलन या संयोग।

सामाजिक असंतोष एवं बराबरी की चाह परिर्वतन से ही संभव है। यह परिर्वतन ईश्वर के मिलन से ही संभव है। यही ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा पैदा करती है। इस हेतु आध्यात्मिक जागरण आवश्यक है। साधक में आध्यात्मिक जागरण गुरू कृपा से आता है। गुरू ही लौकिक संबंधो से काट कर उसे आध्यात्मिक संबंध में बांधता है। रहस्यवादियों का पथ अनालोकित होता है। इसलिए उस पथ पर चलने के लिए ऐसे पंथी का मार्गदर्शन आवश्यक है, जो उस पर पहले चल चुका हो। कबीर दास कहते हैं कि मैं तो बहुत निश्चित होकर लोकवेद का मार्ग पकड़े चला जा रहा था कि आगे गुरू मिल गया।

''कबीर पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथ।

आगे थै ए सतगुरू मिल्या, दीपक दिया हाथि।।''

कबीर गुरू के बिना जर्जर नाव पर भवसागर पार करना सोंच रहे थे वह डूबती हीं

'' डूबा था पै ऊबरा, गुरू की लहरि चमंकि।

भेरा देख्या जरजरा, ऊतरि पड़े फरंकि ।।''

कबीर दास जी मानते हैं कि यदि गुरू नहीं मिलता तो बड़ी हानि होती।

'भली भई जो गुरू मिल्या नहि तर हो ति हानि'

कबीर दास जी ईश्वर, गुरू और जीवात्मा में भूमिका भेद के बावजूद अभिन्नता मानते हैं और इस कारण उनकी वाणी में कुछ अटपटापन आ जाता है। लेकिन ध्यान से देखें तो उसमे एक स्पष्ट अद्वैत दृष्टि दिखेगी। ब्रह्म प्राप्ति के बाद ब्रह्म में, गुरू में, जीवात्मा में फर्क कहाँ रह जाता। कबीर का जो गुरू है वही ब्रह्म के दीदार से सद्गुरू हो जाता है— 'गुरू गोबिंद तौ एक है, दूजा यह आकार' । यह सद्गुरू ही कबीर का ब्रह्म या मोमिन है द्य गुरू के कारण साधक की जीवात्मा अपने सही स्वरूप को पहचानती है। ब्रह्म के परिप्रक्ष्य में ही अपने को देखना आत्म—ज्ञान है। कबीर की जीवात्मा खुले नेत्र से उस ब्रह्म को देखती है और उसे पहचानते हुए अपनी पहचान निर्धारित करती है। एक वार जैसे हीं उस ब्रह्म के दर्शन होते हैं तो कबीर की आँखें चौंधिया सी जाती है वह एक विलक्षण अनुभव है जिसे बांटा नहीं जा सकताः

''पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उन्मान।

कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान।।''

यह दर्शन गुरू की सहायता से ही संभव है। इस दर्शन के बाद विलग होते ही जीवात्मा पुनर्दर्शन के लिए तड़प उठती है। कबीर उसे चारो ओर ढुढ़ते हैं। उसकी छवि हर क्षण आँखों में बसी रहती है।

'दुइ दुइ लोचन पेखा, हरि बिनु अउरू न देखा।'

यह वियोगिनी जीवात्मा प्रेम के कारण ही उस दिव्य अनुभूति से तदाकार के लिए विकल हो जाती है

'आठो पहर मतवाला लागि रे

आठो पहर साँझ की धौक पिउ पिउ'

चकवी बिछुरी रैणि की, आई मिली परभाति।

जे जन बिछुरे राम से, ते दिन मिलें न राति।।

कबीरदास के रहस्यवाद में प्रेम को बहुत महत्व दिया गया है। उनका प्रेम भी विरह में ही परिपक्व होता है। कबीर का प्रेम उपर से देखने से जितना सरल दिखता है उतना है नहीं। उनका प्रेम तो आत्मविसर्जन है। अपने को देकर ही उस परम प्रिय ब्रह्म को पाया जा सकता है।

''कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।

सीस उतारै भूइ धरे, सो पैठे घर माहिं।।''

इस प्रेम के लिए साधक को पूर्णतः अहम् से मुक्त होकर ब्रह्म के लिए समर्पित हो जाना पड़ता है। यहाँ आत्म विसर्जन से पछतावा नहीं होता सुख मिलता है।

'कहे कबीर प्रेम का मारग,

सिर देना तो रोना क्या रे'

अन्तिम अवस्था है चिर विरह के बाद चिर संयोग यहाँ जीवात्मा की सारी बेचौनी समाप्त हो जाती है। अहम' और इदम' का फर्क नहीं रह जाता 'मैं' और 'पर' का द्वैत मिट जाता है।

''मैं सबनि औरनि मैं हूँ सब

मेरी विलगि–विलगि विलगाई हो।

कोई कहौ कबीर, कोई कहौ रामराई हो।''

यही अद्वैत अवस्था है जहाँ व्यक्ति चेतना विश्व चेतना में समाहित हो जाती है। यहाँ इस अवस्था में ही कबीर को कोई कबीर कहता है कोई रामराई कहता है। जब कोई कबीर को पुकारता है तो राम जवाब देते हैं और जब राम को पुकारता है तो कबीर जवाब देते हैं। इन दोनों की भूमिकाएँ पहले अलग–अलग थी अब एक हैं। कबीर की जीवात्मा कहती है कि अब इस अवस्था में जो गति ईश्वर की होगी वही मेरी होगी। 'हरि मरिहैं तो हमहु मरिहैं, हरि न मरिहैं तो हम काहे को मरि हैं'। जीवात्मा भी परमात्मा में मिलकर परमात्मा के गुणों से विभूषित हो जाती हैं दो का एक हो जाना ही अद्वैत है। कबीर ने इसे जल और घड़े के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है।

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।

फुटा कुंभ जल–जल ही समाना यह तत्व कथो गियानी।।

निष्कर्ष

कबीर दास की रहस्यमय कविता मानव आत्मा की परमात्मा की खोज की गहन खोज का काम करती है। आध्यात्मिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण उस समय के लिए कट्टरपंथी था, जो संगठित धर्म और हठधर्मिता के बंधनों से मुक्त था। कबीर का रहस्यवाद, दैवीय मिलन की ओर आंतरिक, व्यक्तिगत यात्रा पर जोर देने के साथ, बुद्धि को चुनौती देता है और प्रेम, आध्यात्मिक जागृति और अहंकार के त्याग की परिवर्तनकारी शक्ति पर जोर देता है। अपने छंदों के माध्यम से, वह साधक को परमात्मा के साथ एक अंतिम मिलन, अद्वैत की स्थिति, या गैर–द्वैत की ओर मार्गदर्शन करते हैं, जहां स्वयं और परमात्मा के बीच अंतर मिट जाता है। उनका काम प्रत्यक्ष अनुभव की शक्ति और सत्य की सार्वभौमिक खोज का एक कालातीत प्रमाण है, जो धार्मिक सीमाओं को पार करता है और आध्यात्मिक गहराई और प्रामाणिकता के चाहने वालों के साथ गूंजता रहता है।

संदर्भ

1. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुंदर दास, पृ0–103
2. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुंदर दास, पृ0–215
3. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुंदर दास, पृ0–112
4. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुंदर दास, पृ0–69